[2020] 3 उम. नि. प. 228

सी. डोड्डानारायण रेड्डी (मृत) मार्फत विधिक प्रतिनिधिगण और अन्य

बनाम

सी. जयराम रेड्डी (मृत) मार्फत विधिक प्रतिनिधिगण और अन्य

[2009 की सिविल अपील सं. 2165]

14 फरवरी, 2020

न्यायमूर्ति एस. अब्दुल नजीर और न्यायमूर्ति हेमंत गुप्ता

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 133 [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 35, 74 और 76 तथा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 4 का नियम 4] – अपील – सुसंगत दस्तावेज – साबित करने का भार – ग्राह्यता – कोई दस्तावेज जो लोक दस्तावेज नहीं है, उसे साबित करने का भार उस व्यक्ति पर होता है जो उसे अभिलेख पर प्रस्तुत करता है, यदि वह ऐसा करने में असफल रहता है तो ऐसा दस्तावेज साक्ष्य में ग्राह्य नहीं हो सकता है ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 133 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 4 का नियम 4 और परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 44] – अपील – अधीनस्थ न्यायालय द्वारा तथ्य के निष्कर्ष निकालना – अपील – उच्च न्यायालय द्वारा उलटा जाना – अपील – यदि किसी मामले में, अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा तथ्य के निष्कर्ष निकाले गए हैं और अपील में, उच्च न्यायालय द्वारा उसमें हस्तक्षेप करते हुए तथ्य के निष्कर्ष को उलट दिया जाता है तो यह अयुक्तियुक्त और अनुचित होगा क्योंकि उच्च न्यायालय द्वारा अधीनस्थ न्यायालयों के उन्हीं निष्कर्षों में हस्तक्षेप किया जा सकता है जिनमें विधि के सारवान् प्रश्न अंतर्वलित होते हैं अन्यथा नहीं ।

वर्तमान मामले में, वादी ने स्वयं और अपने तीन भाइयों जो

प्रतिवादी सं. 1, 2 और 3 हैं, के बीच वाद अनुसूचित संपत्ति में ¼ हिस्से का विभाजन और पृथक् कब्जे के लिए वाद फाइल की थी । प्रतिवादी सं. 4 से 17 वे व्यक्ति हैं जिन्होंने प्रतिवादी सं. 1 से 3 अर्थात् भाइयों से संपत्ति क्रय की है । वादी ने यह दावा किया था कि वह वर्ष 1963 में अपने पिता की मृत्यु के समय पर अवयस्क था और यह कि वह संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब की संपत्ति के संयुक्त कब्जे और उपभोग में संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब के सदस्य के रूप में निरंतर बना हुआ था । वादी ने यह प्राख्यान किया कि कुछ दस्तावेजों पर उसके हस्ताक्षर ले लिए गए थे और यह कि वह उनकी अंतर्वस्तुओं को नहीं जानता था, न ही उसने उसका कोई दस्तावेज निष्पादित किया था और न ही वह यह समझता था कि वे क्या थे । फाइल लिखित कथन में, यह प्राख्यान किया था कि वादी और प्रतिवादी सं. 1 से 3 और उसके पिता तारीख 15 जून, 1963 तक संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब के सदस्य थे । वादी ने संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब से स्वयं को पृथक् करने की मांग और इच्छा व्यक्त की और तारीख 15 जून, 1963 को एक निर्मुक्ति विलेख निष्पादित किया और संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब से संबंधित सभी व्यक्तियों को तामील किया और तब उसने अपने हिस्से का 5,000/- रुपए का प्रतिफल प्राप्त किया और कुटुम्ब में अपने सभी अधिकारों का त्यजन कर दिया । वादी निर्मुक्ति विलेख निष्पादित करने के पश्चात् कुटुम्ब से दूर चला गया और वर्ष 1963 तक अपने ससुर के घर केम्पापुरा गांव में रहा । इस बात से इनकार किया गया कि वादी अपने पिता की मृत्यु के समय पर अवयस्क था । यह भी अभिवाक् किया गया कि उसने तारीख 29 जून, 1964 को केम्पापुरा के ममजम्मा पुत्री ननजुंदप्पा के साथ विवाह किया था । वादी ने यह साबित करने के अनुक्रम में कि वह अवयस्क था, विद्यालय छोड़ने का प्रमाणपत्र, प्रदर्श पी-1 प्रस्तुत किया और अपने भाई अभि. सा. 2, सी. रामास्वामी रेड्डी की परीक्षा भी कराई । भाई ने अपने पिता की मृत्यु के समय पर वादी की आयु के बारे में कोई अभिसाक्ष्य नहीं दिया । वादी ने विद्यालय से किसी कर्मचारी को प्रस्तुत नहीं किया यह साबित करने के लिए कि ऐसा प्रमाणपत्र विद्यालय के अभिलेख से था, न ही उसने उस प्रधानाध्यापक की परीक्षा कराई जिसने ऐसा प्रमाणपत्र जारी किया था । वादी ने अपनी माता की परीक्षा भी नहीं कराई जो उस समय उपलब्ध थी जब वादी का साक्ष्य अभिलिखित होने

वाला था । विद्वान् विचारण न्यायालय ने विवाद्यक सं. 1 पर यह निष्कर्ष निकाला कि तारीख 15 जून, 1963 के रजिस्ट्रीकृत निर्मुक्ति विलेख (प्रदर्श डी-1) में वादी की आयु लगभग 22 वर्ष के रूप में उल्लिखित है और निर्मुक्ति विलेख के निष्पादन के तत्पश्चात् वादी ने तारीख 29 जून, 1964 को ममजम्मा के साथ विवाह किया । प्रतिवादियों द्वारा प्रस्तुत रजिस्ट्रीकृत विवाह विलेख प्रदर्श डी-2 से यह भी साबित होता है कि वादी की आयु 24 वर्ष थी । विचारण न्यायालय ने विद्यालय छोड़ने का प्रमाणपत्र (प्रदर्श पी-1) में उल्लिखित वादी की जन्म-तिथि पर विश्वास नहीं किया क्योंकि उसे विद्यालय के प्रधानाध्यापक द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया था और वादी ने विद्यालय छोड़ने के प्रमाणपत्र की अंतर्वस्तुओं को साबित करने के लिए विद्यालय के प्रधानाध्यापक की परीक्षा नहीं कराई थी । इस प्रकार, विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि वादी अपने भाइयों और अपने पिता के पक्ष में निर्मुक्ति विलेख निष्पादित करने के समय पर अवयस्क नहीं था । विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि वादी ने यह कथन किया है कि उसके पिता द्वारा कुछ दस्तावेजों पर उसके कुछ हस्ताक्षर ले लिए गए थे और वह उन दस्तावेजों की अंतर्वस्तुओं को नहीं जानता था । प्रतिवादियों ने वादी द्वारा निर्मुक्ति विलेख के निष्पादन को साबित कर दिया है । वादी ने यह स्वीकार किया है कि उसने तारीख 15 जून, 1963 को एक निर्मुक्ति विलेख निष्पादित किया था और उसके पिता और भाइयों और उसके बीच विवाह उद्भूत होने के कारण वह केम्पापुरा में अपने ससुर के साथ रहने लगा था । उसने यह स्वीकार किया है कि उसके पिता की मृत्यु तारीख 30 जून, 1963 को हुई थी और यह कि उसके भाई वर्ष 1964 से पृथक्-पृथक् रह रहे हैं । विचारण न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि वादी ने निर्मुक्ति विलेख के संबंध में, किसी प्रकार के कपट और प्रपीड़न होने का अभिवाक् नहीं किया है, इस प्रकार, विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष किया कि निर्मुक्ति विलेख विधिमान्य है और वादी, वाद अनुसूचित संपत्तियों में कोई हिस्सा पाने का हकदार नहीं है । इससे व्यथित होकर वादी ने विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने इस प्रश्न की परीक्षा की

कि क्या निर्मुक्ति विलेख के निष्पादन की तारीख पर, वादी वयस्क था या नहीं और यह कि क्या निर्मुक्ति विलेख को असम्यक् प्रभाव या प्रपीड़न इत्यादि से प्राप्त किया गया था । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि वादी किसी भी समय पर यह अभिवाक् नहीं किया है कि निर्मुक्ति विलेख कपट या प्रपीड़न द्वारा प्राप्त किया गया था या यह कि उसने उसके अधीन कोई प्रतिफल प्राप्त नहीं किया था । पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्षियों के कथनों और दस्तावेजों पर चर्चा करने के पश्चात्, प्रथम अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि वादी, निर्मुक्ति विलेख के निष्पादन के समय पर अवयस्क नहीं था और इस प्रकार, वादी की अपील को खारिज कर दिया और विद्वान् विचारण न्यायालय के वाद खारिज करने के आदेश को कायम रखा । द्वितीय अपील में, उच्च न्यायालय द्वारा विरचित सारवान् प्रश्न यह था कि क्या निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय और डिक्री, प्रदर्श पी-1 अर्थात् विद्यालय छोड़ने का प्रमाणपत्र के अनुचित विचार के कारण अवैधता से ग्रसित है । उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि प्रदर्श पी-1 एक स्थानांतरण प्रमाणपत्र है और इस प्रकार, वादी, अवयस्क था और ऐसा प्रमाणपत्र, साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 35 के अधीन आयु के सबूत के रूप में ग्राह्य है । यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि वादी उस तारीख को अवयस्क था जब तारीख 15 जून, 1963 को निर्मुक्ति विलेख निष्पादित हुआ था, इसलिए, ऐसा विलेख, अकृत और शून्य है और विबंधन का अभिवाक् उद्भूत करने के लिए समर्थ नहीं है । इससे व्यथित होकर इस न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की गई । न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय, उद्भूत तर्कों में कोई गुणागुण नहीं पाता है । भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 74 के निबंधनों में लोक दस्तावेज में वे सभी दस्तावेज सम्मिलित होते हैं जो शासकीय निकायों या अधिकरणों के अभिलेखों को बनाते हैं । उक्त अधिनियम, 1872 की धारा 76, किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार देती है कि वह लोक दस्तावेज की प्रति की मांग किए जाने पर उसके लिए शुल्क चुकाने पर ऐसी प्रति इस लिखित प्रमाणपत्र के सहित देगा कि यह ऐसे दस्तावेज की शुद्ध प्रति है । प्रमाणित प्रतियों को उन लोक दस्तावेजों या लोक

दस्तावेजों के भागों की अंतर्वस्तुओं के सबूत के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है जिनके लिए वे प्रतियां तात्पर्यित होती हैं । वादी ने इस अपील के अभिलेखों पर प्रमाणपत्र (प्रदर्श पी-1) की फोटोकॉपी प्रस्तुत की है । ऐसा प्रमाणपत्र यह दर्शित नहीं करता है कि इसे लोक दस्तावेज की प्रमाणित प्रति के रूप में कहा जाए, जैसा कि उक्त अधिनियम, 1872 की धारा 76 द्वारा अनुध्यात है । वादी द्वारा विद्यालय छोड़ने का प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया गया है और उस पर उसके पिता द्वारा हस्ताक्षर किया गया कथित है । वह व्यक्ति जिसने विद्यालय रजिस्टर में जन्म-तिथि अभिलिखित की है या वह व्यक्ति जिसने विद्यालय स्थानांतरण प्रमाणपत्र में अपने पिता के हस्ताक्षर को साबित किया है, की परीक्षा नहीं की गई है । न ही विद्यालय के किसी ऐसे पदधारी द्वारा न ही किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा ऐसे प्रमाणपत्र पर उसके पिता के हस्ताक्षर को साबित किया गया है । स्वयं तामील कथन के अलावा, यह दर्शित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि जन्म-तिथि की प्रविष्टि उस अधिकारिक प्रभारी द्वारा की गई थी जो एकमात्र इसे कर सकता था जिससे कि यह भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 35 के अधीन ग्राह्य हो सकता था । तथापि, उच्च न्यायालय ने प्रमाणपत्र (प्रदर्श पी-1) की सत्यता को साबित करने के लिए कोई अन्य साक्ष्य नहीं पाया है । न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि उच्च न्यायालय ने प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित तथ्य के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करके विधि में गंभीर त्रुटि कारित की है । वादी ने, वाद पत्र में तारीख 15 जून, 1963 के निर्मुक्ति विलेख को इस आधार पर चुनौती नहीं दी है कि वह निष्पादन की तारीख पर अवयस्क था, न ही उसने उक्त दस्तावेज के निष्पादन में कपट, प्रपीड़न या असम्यक् प्रभाव के आधार पर चुनौती दी है । उसने ऐसा अभिवाक् नहीं किया है जैसा कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश vi के नियम 4 के निबंधनों में अभिवाक् किया जाना अपेक्षित है । वादी द्वारा उद्भूत एकमात्र अभिवाक् यह है कि वह वर्ष 1963 में, अपने पिता की मृत्यु के समय पर अवयस्क था । उसने वाद पत्र में अपने पिता की मृत्यु की तारीख को प्रकट नहीं किया है । वाद पत्र में प्रकथन यह है कि कतिपय दस्तावेजों पर उसके हस्ताक्षर ले लिए गए थे किन्तु वह उनकी अंतर्वस्तुओं को नहीं जानता था । लिखित

कथन में, यह सुस्पष्टत: अभिवाक् किया गया है कि निर्मुक्ति विलेख को स्वैच्छिक रूप से निष्पादित किया गया था और वह कुटुम्ब से दूर चला गया था और अपने ससुर के गांव में रह रहा था । यह तथ्य कि उसने गांव छोड़ दिया था और अपने ससुर के घर में रुका था, उसके द्वारा स्वीकृत है जब वह अभि. सा. 1 के रूप में उपस्थित हुआ था । उच्च न्यायालय के समक्ष यह भी विवादित नहीं किया गया है कि उसके द्वारा 5,000/- रुपए प्राप्त किया गया था जब तारीख 15 जून, 1963 को निर्मुक्ति विलेख निष्पादित हुआ था । वादी ने तारीख 15 जून, 1963 को निष्पादित निर्मुक्ति विलेख के अनुसरण में 5,000/- रुपए के प्रतिफल के फायदे को लिया था । उसने फाइल वाद में ऐसे निर्मुक्ति विलेख को चुनौती नहीं दी है अपितु उसने संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब का सदस्य होने का प्राख्यान किया है, यद्यपि, स्वयं उसके साक्ष्य के अनुसार, उसने संयुक्त कुटुम्ब छोड़ दिया था, और अपने ससुर के गांव में रहने लगा था । इसके पश्चात्, निर्मुक्ति विलेख के आधार पर, कुटुम्ब के अन्य सदस्यों ने अन्य प्रतिवादियों के पक्ष में कुछ संपत्ति अंतरित की है, इसलिए, वाद, डिक्री नहीं हो सकता है जब दो रजिस्ट्रीकृत दस्तावेज (प्रदर्श डी-1 और डी-2) को वादी द्वारा विवादित नहीं किया गया है जबकि प्रतिपरीक्षा में ऐसे दस्तावेजों का सामना किया था । न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि यह साबित करने का भार वादी पर था कि वह निर्मुक्ति विलेख के निष्पादन के समय पर अवयस्क था । वह तारीख 8 अप्रैल, 1946 के रूप में अपनी जन्म-तिथि को साबित करने में असफल रहा, इसलिए, उसका वाद खारिज किए जाने योग्य है और विचारण न्यायालय तथा प्रथम अपील न्यायालय द्वारा सही ही खारिज किया गया था । उच्च न्यायालय, द्वितीय अपील में, विभिन्न मत अपनाने के लिए कि ऐसे दस्तावेज साबित हैं, साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन नहीं कर सकता है । अभिकथित अनुचित विचार के कारण अवैधता से विधि का सारवान् प्रश्न उद्भूत नहीं होता है । वादी ने यह स्वीकार किया है कि निर्मुक्ति विलेख और विवाह विलेख क्रमश: तारीख 15 जून, 1963 और तारीख 29 जून, 1964 को उसके द्वारा निष्पादित किया गया है जब उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में सामना किया था । दोनों दस्तावेज, रजिस्ट्रीकृत दस्तावेज हैं । स्वीकृति के आधार पर, दोनों न्यायालयों ने यह तथ्य का निष्कर्ष निकाला है कि वादी तारीख 8 अप्रैल, 1986 के

रूप में अपनी जन्म-तिथि को साबित करने में समर्थ नहीं रहा है । न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि उच्च न्यायालय ने उसी साक्ष्य के आधार पर जिस पर दोनों विचारण न्यायालय के साथ ही प्रथम अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि वादी तारीख 8 अप्रैल, 1986 के रूप में अपनी जन्म-तिथि साबित करने में असफल रहा है, मात्र विभिन्न अपनाते हुए, द्वितीय अपील में हस्तक्षेप करके गंभीर त्रुटि कारित की है । विद्वान् उच्च न्यायालय पूर्वोक्त निर्णयों में अधिकथित परीक्षणों से संतुष्ट नहीं हैं । दोनों न्यायालयों, विचारण न्यायालय और विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने विद्यालय छोड़ने के प्रमाणपत्र की परीक्षा की है और यह निष्कर्ष निकाला है कि ऐसे प्रमाणपत्र से जन्म-तिथि साबित नहीं होती है । उच्च न्यायालय, विचारण न्यायालय के रूप में कार्य करते हुए, विभिन्न मत अपना सकता है किन्तु जब एक बार दोनों न्यायालयों ने ऐसा निष्कर्ष निकाला है जो दस्तावेजों की सामग्रियों के गलत परिशीलन पर आधारित नहीं है, न ही इसे विधि के किसी उपबंधों के विरुद्ध अभिलिखित किया गया है और न ही यह कहा जा सकता है कि कोई न्यायाधीश न्यायिक तौर पर और युक्तियुक्त तौर पर कार्य करते हुए, ऐसा निष्कर्ष नहीं निकाल सकता है तो उच्च न्यायालय द्वारा त्रुटि करना नहीं कहा जा सकता है । परिणामत:, उच्च न्यायालय के समक्ष विचार के लिए विधि का सारवान् प्रश्न उद्भूत नहीं हुआ था । इस प्रकार, न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित तथ्य के निष्कर्ष जिसकी पुष्टि प्रथम अपील न्यायालय द्वारा की गई है, में हस्तक्षेप करके विधि में त्रुटि कारित की है । द्वितीय अपील में, तथ्य के निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है जब तक कि निष्कर्ष अनुचित नहीं है । उच्च न्यायालय तथ्य के निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है । (पैरा 14, 15, 20, 21, 22, 23, 24, 29 और 30)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2019]	(2019) 8 एस. सी. सी. 637 :	
	राजस्थान राज्य बनाम **शिव दयाल** ;	28

[2010] (2010) 9 एस. सी. सी. 209 :
मदन मोहन सिंह और अन्य बनाम
रजनी कांत और एक अन्य ; 12,18

[2002] (2002) 1 एस. सी. सी. 178 :
मधेगौड़ा (मृत) मार्फत विधिक प्रतिनिधिगण बनाम
अंकेगौड़ा (मृत) मार्फत विधिक प्रतिनिधिगण
और एक अन्य ; 13,16

[2001] (2001) 3 एस. सी. सी. 179 :
संतोष हजारी बनाम **पुरुषोत्तम तिवारी** ; 27

[1999] (1999) 6 एस. सी. सी. 343 :
कर्नाटक वक्फ बोर्ड बनाम
अंजुमन-ई-इस्मेल मदरीस-उल-निस्वान ; 25

[1999] (1999) 3 एस. सी. सी. 722 :
कोनाडिबा दगदू कदम बनाम
सबितकी बाई सोपान गुजर और अन्य ; 26

[1988] (1988) सप्ली. एस. सी. सी. 604 :
बिराद मल सिंघवी बनाम **आनंद पुरोहित** ; 12,17

[1954] ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 263 :
वली सिंह बनाम **सोहन सिंह** ; 10,11

[1928] ए. आई. आर. 1928 प्रिवी काउंसिल 152 :
नवाब सादिक अली खान और अन्य बनाम
जय किशोरी और अन्य । 9

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2009 की सिविल अपील सं. 2165.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 133 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री एस. एस. जावली, ज्येष्ठ अधिवक्ता, पी. आर. रामाशीष, अब्दुल अजीम कालेबुड्डे, अधिवक्तागण

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री (सुश्री) किरण सूरी, ज्येष्ठ अधिवक्ता, एस. जे. स्मिथ, (सुश्री) ऐश्वर्या कुमार, डा. (श्रीमती) विपिन गुप्ता, वेंकट सुब्रमणियम टी. आर., लिखी चंद बोमशले, राघवेन्द्र एस. श्रीवास्तव, अधिवक्तागण

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति हेमंत गुप्ता ने दिया ।

न्या. गुप्ता – प्रतिवादियों ने कर्नाटक उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 14 जून, 2005 को पारित आदेश से व्यथित होकर यह अपील फाइल की है जिसके द्वारा वादी-सी. जयराम रेड्डी द्वारा फाइल अपील को दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित तथ्यों के समवर्ती निष्कर्षों को अपास्त करते हुए, मंजूर कर लिया था । उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित सारवान् विधि के प्रश्न का उत्तर दिया :-

> "क्या निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय और डिक्री, प्रदर्श पी-1 अर्थात् विद्यालय छोड़ने का प्रमाणपत्र के अनुचित विचार के कारण अवैधता से ग्रसित है" ?

2. वादी ने स्वयं और अपने तीन भाइयों जो प्रतिवादी सं. 1, 2 और 3 हैं, के बीच वाद अनुसूचित संपत्ति में ¼ हिस्से का विभाजन और पृथक् कब्जे के लिए वाद फाइल की थी । प्रतिवादी सं. 4 से 17 वे व्यक्ति हैं जिन्होंने प्रतिवादी सं. 1 से 3 अर्थात् भाइयों से संपत्ति क्रय की है । वादी ने यह दावा किया था कि वह वर्ष 1963 में अपने पिता की मृत्यु के समय पर अवयस्क था और यह कि वह संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब की संपत्ति के संयुक्त कब्जे और उपभोग में संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब के सदस्य के रूप में निरंतर बना हुआ था । वादी ने यह प्राख्यान किया कि कुछ दस्तावेजों पर उसके हस्ताक्षर ले लिए गए थे और यह कि वह उनकी अंतर्वस्तुओं को नहीं जानता था, न ही उसने उसका कोई दस्तावेज निष्पादित किया था और न ही वह यह समझता था कि वे क्या थे । वाद पत्र का पैरा 6 इस प्रकार है :–

> "6. वादी को कुटुम्ब मामले के बारे में अंधेरे में रखा गया था और उसने अन्य प्रतिवादियों के आदेश का अप्रत्यक्षत: पालन किया

था और उसने जो कुछ भी किया उसे करने के लिए कहा गया था । वस्तुत:, कुछ दस्तावेजों पर उसके हस्ताक्षर ले लिए गए थे और वादी उनकी अंतर्वस्तुओं को नहीं जानता था, न ही उसने उसका कोई दस्तावेज निष्पादित किया था अथवा न ही वह यह जानता था कि वे क्या थे ।"

3. फाइल लिखित कथन में, यह प्राख्यान किया था कि वादी और प्रतिवादी सं. 1 से 3 और उसके पिता तारीख 15 जून, 1963 तक संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब के सदस्य थे । वादी ने संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब से स्वयं को पृथक् करने की मांग और इच्छा व्यक्त की और तारीख 15 जून, 1963 को एक निर्मुक्ति विलेख निष्पादित किया और संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब से संबंधित सभी व्यक्तियों को तामील किया और तब उसने अपने हिस्से का 5,000/- रुपए का प्रतिफल प्राप्त किया और कुटुम्ब में अपने सभी अधिकारों का त्यजन कर दिया । वादी निर्मुक्ति विलेख निष्पादित करने के पश्चात् कुटुम्ब से दूर चला गया और वर्ष 1963 तक अपने ससुर के घर केम्पापुरा गांव में रहा । इस बात से इनकार किया गया कि वादी अपने पिता की मृत्यु के समय पर अवयस्क था । यह भी अभिवाक् किया गया कि उसने तारीख 29 जून, 1964 को केम्पापुरा के ममजम्मा पुत्री ननजुंदप्पा के साथ विवाह किया था ।

4. पक्षकारों के क्रमश: अभिवचनों के आधार पर, विचारण न्यायालय ने कम से कम 16 विवाद्यकों को विरचित किया । तथापि, इस प्रक्रम पर, विवाद्यक सं. 1 और 2, सुसंगत विवाद्यक हैं, जो इस प्रकार हैं :-

"1. क्या वादी, वर्ष 1963 में अवयस्क था ?

2. क्या वादी, संयुक्त कुटुम्ब से पृथक् हो गया था और तारीख 15 जून, 1963 को एक निर्मुक्ति विलेख निष्पादित किया था ? यदि ऐसा था, तो क्या वह विधिमान्य है और क्या वादी हिस्सा पाने का हकदार है ?

5. वादी ने यह साबित करने के अनुक्रम में कि वह अवयस्क था, विद्यालय छोड़ने का प्रमाणपत्र, प्रदर्श पी-1 प्रस्तुत किया और अपने भाई

अभि. सा. 2, सी. रामास्वामी रेड्डी की परीक्षा भी कराई । भाई ने अपने पिता की मृत्यु के समय पर वादी की आयु के बारे में कोई अभिसाक्ष्य नहीं दिया । वादी ने विद्यालय से किसी कर्मचारी को प्रस्तुत नहीं किया यह साबित करने के लिए कि ऐसा प्रमाणपत्र विद्यलाय के अभिलेख से था, न ही उसने उस प्रधानाध्यापक की परीक्षा कराई जिसने ऐसा प्रमाणपत्र जारी किया था । वादी ने अपनी माता की परीक्षा भी नहीं कराई जो उस समय उपलब्ध थी जब वादी का साक्ष्य अभिलिखित होने वाला था ।

6. विद्वान् विचारण न्यायालय ने विवाद्यक सं. 1 पर यह निष्कर्ष निकाला कि तारीख 15 जून, 1963 के रजिस्ट्रीकृत निर्मुक्ति विलेख (प्रदर्श डी-1) में वादी की आयु लगभग 22 वर्ष के रूप में उल्लिखित है और निर्मुक्ति विलेख के निष्पादन के तत्पश्चात् वादी ने तारीख 29 जून, 1964 को ममजम्मा के साथ विवाह किया । प्रतिवादियों द्वारा प्रस्तुत रजिस्ट्रीकृत विवाह विलेख प्रदर्श डी-2 से यह भी साबित होता है कि वादी की आयु 24 वर्ष थी । विचारण न्यायालय ने विद्यालय छोड़ने का प्रमाणपत्र (प्रदर्श पी-1) में उल्लिखित वादी की जन्म-तिथि पर विश्वास नहीं किया क्योंकि उसे विद्यालय के प्रधानाध्यापक द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया था और वादी ने विद्यालय छोड़ने के प्रमाणपत्र की अंतर्वस्तुओं को साबित करने के लिए विद्यालय के प्रधानाध्यापक की परीक्षा नहीं कराई थी । इस प्रकार, विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारत किया कि वादी अपने भाइयों और अपने पिता के पक्ष में निर्मुक्ति विलेख निष्पादित करने के समय पर अवयस्क नहीं था ।

7. विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि वादी ने यह कथन किया है कि उसके पिता द्वारा कुछ दस्तावेजों पर उसके कुछ हस्ताक्षर ले लिए गए थे और वह उन दस्तावेजों की अंतर्वस्तुओं को नहीं जानता था । प्रतिवादियों ने वादी द्वारा निर्मुक्ति विलेख के निष्पादन को साबित कर दिया है । वादी ने यह स्वीकार किया है कि उसने तारीख 15 जून, 1963 को एक निर्मुक्ति विलेख निष्पादित किया था और उसके पिता और भाइयों और उसके बीच विवाह

उद्भूत होने के कारण वह केम्पापुरा में अपने ससुर के साथ रहने लगा था । उसने यह स्वीकार किया है कि उसके पिता की मृत्यु तारीख 30 जून, 1963 को हुई थी और यह कि उसके भाई वर्ष 1964 से पृथक्-पृथक् रह रहे हैं । विचारण न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि वादी ने निर्मुक्ति विलेख के संबंध में, किसी प्रकार के कपट और प्रपीड़न होने का अभिवाक् नहीं किया है, इस प्रकार, विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष किया कि निर्मुक्ति विलेख विधिमान्य है और वादी, वाद अनुसूचित संपत्तियों में कोई हिस्सा पाने का हकदार नहीं है ।

8. इससे व्यथित होकर वादी ने विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने इस प्रश्न की परीक्षा की कि क्या निर्मुक्ति विलेख के निष्पादन की तारीख पर, वादी वयस्क था या नहीं और यह कि क्या निर्मुक्ति विलेख को असम्यक् प्रभाव या प्रपीड़न इत्यादि से प्राप्त किया गया था । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि वादी किसी भी समय पर यह अभिवाक् नहीं किया है कि निर्मुक्ति विलेख कपट या प्रपीड़न द्वारा प्राप्त किया गया था या यह कि उसने उसके अधीन कोई प्रतिफल प्राप्त नहीं किया था । पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्षियों के कथनों और दस्तावेजों पर चर्चा करने के पश्चात्, प्रथम अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि वादी, निर्मुक्ति विलेख के निष्पादन के समय पर अवयस्क नहीं था और इस प्रकार, वादी की अपील को खारिज कर दिया और विद्वान् विचारण न्यायालय के वाद खारिज करने के आदेश को कायम रखा ।

9. द्वितीय अपील में, उच्च न्यायालय द्वारा विरचित सारवान् प्रश्न यह था कि क्या निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय और डिक्री, प्रदर्श पी-1 अर्थात् विद्यालय छोड़ने का प्रमाणपत्र के अनुचित विचार के कारण अवैधता से ग्रसित है । उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि प्रदर्श पी-1 एक स्थानांतरण प्रमाणपत्र है और इस प्रकार, वादी, अवयस्क था और ऐसा प्रमाणपत्र, साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 35 के अधीन आयु के सबूत के रूप में ग्राह्य है । यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि वादी उस तारीख को अवयस्क था जब तारीख 15 जून, 1963 को निर्मुक्ति विलेख निष्पादित हुआ था, इसलिए, ऐसा विलेख, अकृत

और शून्य है और विबंधन का अभिवाक् उद्भूत करने के लिए समर्थ नहीं है । **नवाब सादिक अली खान और अन्य** बनाम **जय किशोरी और अन्य**[1] वाले मामले का अवलंब लिया गया है । ऐसा निष्कर्ष निकालने के पश्चात्, उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि निर्मुक्ति विलेख अकृत और शून्य है और बाध्यकारी नहीं है, यद्यपि, उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि वादी ने उस समय पर 5,000/- रुपए का प्रतिफल प्राप्त किया था ।

10. वादी के विद्वान् काउंसेल ने इस न्यायालय द्वारा **वली सिंह** बनाम **सोहन सिंह**[2] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया, जिसमें वली सिंह के संरक्षक के रूप में किरपाल सिंह द्वारा किए गए त्यजन को विधि में निष्फल पाया गया था ।

11. हम, वादी के विद्वान् काउंसेल द्वारा **वली सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लेते हुए, उद्भूत तर्क में कोई गुणागुण नहीं पाते हैं । **वली सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में वादी ने नामांतरण को यह कहते हुए चुनौती दी थी कि उक्त नामांतरण उसकी अवयस्कता के दौरान किया गया था । तर्क यह था कि उसने किरपाल सिंह की मृत्यु की तारीख पर संपत्ति उत्तराधिकार में प्राप्त की थी किन्तु उसके दत्तक लेने के पूर्व । उच्च न्यायालय ने वली सिंह द्वारा फाइल वाद को खारिज कर दिया था, अन्य बातों के साथ-साथ इस कारण से कि यह वली सिंह के पदधारी पर निर्भर था कि वह इस बात के होते हुए भी कि पक्षकार संयुक्त कब्जे में निरंतर रह रहे थे, बावजूद इसके वयस्कता प्राप्त करने के तीन वर्षों के भीतर अंतरण को समाप्त कर सकता था । किरपाल सिंह, उसका दत्तक पिता का कथन यह था कि नामांतरण में यह मंजूर किया गया था कि वली सिंह का उसके नैसर्गिक पिता की संपत्ति से कोई संबंध नहीं है । यह निष्कर्ष निकाला गया कि किरपाल सिंह द्वारा किया गया कथन, वली सिंह के संरक्षक के रूप में किसी अंतरण या त्यजन पर निर्भर नहीं था जब कि अवयस्क वली सिंह द्वारा निर्मुक्ति विधि में निष्फल था । इसलिए, वाद को

---

[1] ए. आई. आर. 1928 प्रिवी काउंसिल 152.

[2] ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 263.

परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 44 को ध्यान में रखते हुए, वर्जित नहीं कहा जा सकता है । उक्त निर्णय, वर्तमान मामले के तथ्यों में लागू नहीं होता है क्योंकि यह विद्यालय छोड़ने के प्रमाणपत्र की ग्राह्यता के प्रश्न पर विचार नहीं करता है जो जन्म-तिथि अवधारित करता था ।

12. वादी-प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल का तर्क यह है कि अंतरण स्थानांतरण प्रमाणपत्र एक लोक दस्तावेज है जिसे उसके पिता द्वारा किए गए कथन के आधार पर तैयार किया गया था । ऐसे दस्तावेज पर उसके पिता के हस्ताक्षर भी थे । यह भी दलील दी गई है कि ऐसा दस्तावेज सरकारी विद्यालय के स्टॉक के पदीय कर्तव्यों के दौरान किया गया है, इसलिए, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 35 के निबंधनों में इसकी सत्यता की उपधारणा की जाती है । वादी के विद्वान् काउंसेल ने **बिराद मल सिंघवी** बनाम **आनंद पुरोहित**[1] वाले मामले में, इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय को भी निर्दिष्ट किया गया है जिसमें विद्यालय रजिस्टर में जन्म-तिथि अभिलिखित करने वाली प्रविष्टि को प्रमाणक मूल्य का माना गया है । **मदन मोहन सिंह और अन्य** बनाम **रजनी कांत और एक अन्य**[2] वाले मामले में दिए गए निर्णय के प्रति निर्देश करते हुए, यह दलील दी गई कि विद्यालय रजिस्टर में प्रविष्टि की उपेक्षा नहीं की जा सकती है ।

13. वादी के विद्वान् काउंसेल ने **मधेगौड़ा (मृत) मार्फत विधिक प्रतिनिधिगण** बनाम **अंकेगौड़ा (मृत) मार्फत विधिक प्रतिनिधिगण और एक अन्य**[3] वाले मामले में, इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का भी अवलंब लेते हुए, यह दलील दी कि उस अभिकथित त्यजन विलेख को निराकृत करने के लिए एक वाद का फाइल किया जाना ही पर्याप्त है जो एक शून्य दस्तावेज है ।

14. हम, उद्धृत तर्कों में कोई गुणागुण नहीं पाते हैं । भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 74 के निबंधनों में लोक दस्तावेज में वे सभी दस्तावेज सम्मिलित होते हैं जो शासकीय निकायों या अधिकरणों

---

[1] (1988) सप्ली. एस. सी. सी. 604.

[2] (2010) 9 एस. सी. सी. 209.

[3] (2002) 1 एस. सी. सी. 178.

के अभिलेखों को बनाते हैं । उक्त अधिनियम, 1872 की धारा 76, किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार देती है कि वह लोक दस्तावेज की प्रति की मांग किए जाने पर उसके लिए शुल्क चुकाने पर ऐसी प्रति इस लिखित प्रमाणपत्र के सहित देगा कि यह ऐसे दस्तावेज की शुद्ध प्रति है । प्रमाणित प्रतियों को उन लोक दस्तावेजों या लोक दस्तावेजों के भागों की अंतर्वस्तुओं के सबूत के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है जिनके लिए वे प्रतियां तात्पर्यित होती हैं । वादी ने इस अपील के अभिलेखों पर प्रमाणपत्र (प्रदर्श पी-1) की फोटोकॉपी प्रस्तुत की है । ऐसा प्रमाणपत्र यह दर्शित नहीं करता है कि इसे लोक दस्तावेज की प्रमाणित प्रति के रूप में कहा जाए, जैसा कि उक्त अधिनियम, 1872 की धारा 76 द्वारा अनुध्यात है ।

15. वादी द्वारा विद्यालय छोड़ने का प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया गया है और उस पर उसके पिता द्वारा हस्ताक्षर किया गया कथित है । वह व्यक्ति जिसने विद्यालय रजिस्टर में जन्म-तिथि अभिलिखित की है या वह व्यक्ति जिसने विद्यालय स्थानांतरण प्रमाणपत्र में अपने पिता के हस्ताक्षर को साबित किया है, की परीक्षा नहीं की गई है । न ही विद्यालय के किसी ऐसे पदधारी द्वारा न ही किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा ऐसे प्रमाणपत्र पर उसके पिता के हस्ताक्षर को साबित किया गया है । स्वयं तामील कथन के अलावा, यह दर्शित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि जन्म-तिथि की प्रविष्टि उस अधिकारिक प्रभारी द्वारा की गई थी जो एकमात्र इसे कर सकता था जिससे कि यह भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 35 के अधीन ग्राह्य हो सकता था । तथापि, उच्च न्यायालय ने प्रमाणपत्र (प्रदर्श पी-1) की सत्यता को साबित करने के लिए कोई अन्य साक्ष्य नहीं पाया है ।

16. **मधेगौड़ा** (उपर्युक्त) वाले मामले का वादी द्वारा लिया गया अवलंब पुन: वर्तमान मामले में उद्भूत विवाद्यकों से सुसंगत नहीं है । पूर्वोक्त मामले में, स्वीकृतत: अवयस्क की संपत्ति को अवयस्क की बहन द्वारा संरक्षक की हैसियत में तात्पर्यित रूप से कार्य करते हुए, विक्रय कर दिया गया था । विक्रेता की आयु के बारे में कोई विवाद नहीं था जो अवयस्क था । वर्तमान अपील में, विवाद्यक इस तथ्य के इर्द-

गिर्द घूमता है कि क्या वादी उस तारीख को अवयस्क था जिस तारीख को निर्मुक्ति विलेख निष्पादित किया गया था । संपूर्ण मामला, विद्यालय स्थानांतरण प्रमाणपत्र (प्रदर्श पी 1) पर आधारित है जो इसमें अभिलिखित जन्म-तिथि को विश्वसनीय और सही होने के रूप में साबित नहीं करता है ।

17. **बिराद मल सिंघवी** (उपर्युक्त) वाले मामले में, जन्म-तिथि को विद्यालय के प्रधानाचार्य द्वारा साबित किया जाना ईप्सित था । यद्यपि, प्रधानाचार्य, मूल या इसकी प्रति में दाखिला प्ररूप को प्रस्तुत नहीं कर सकते । इसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि विद्यालय के रजिस्टर में अंतर्विष्ट प्रविष्टियां सुसंगत और ग्राह्य हैं किन्तु अभ्यर्थियों की जन्म-तिथि को साबित करने के प्रयोजन के लिए इसका कोई साक्ष्यिक मूल्य नहीं है । साक्ष्य का मूल भाग गायब था क्योंकि यह दर्शित करने के लिए न्यायालय के समक्ष कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया कि किसकी सूचना पर जन्म-तिथि को पूर्वोक्त दस्तावेज में अभिलिखित किया गया था । इस मामले में, निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था :–

> "14. ..... निस्संदेह, प्रदर्श 8, 9, 10, 11 और 12 सुसंगत और ग्राह्य है, किन्तु इन दस्तावेजों का हुक्मी चंद और सूरज प्रकाश जोशी की जन्म-तिथि के सबूत के प्रयोजन के लिए कोई साक्ष्यिक मूल्य नहीं है क्योंकि साक्ष्य का मुख्य भाग गायब है क्योंकि यह दर्शित करने के लिए समक्ष कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है कि इसकी सूचना पर पूर्वोक्त दस्तावेजों में हुक्मी चंद की जन्म-तिथि और सूरज प्रकाश जोशी की जन्म-तिथि अभिलिखित की गई थी । जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि न तो दोनों अभ्यर्थियों के माता-पिता की, न ही उनकी जन्म-तिथि के बारे में विशेष जानकारी रखने वाले किसी अन्य व्यक्ति की, प्रत्यर्थियों द्वारा पूर्वोक्त दस्तावेजों में यथा उल्लिखित जन्म-तिथि को साबित करने के लिए परीक्षा कराई थी । माता-पिता या विशेष जानकारी रखने वाले नजदीकी नातेदार ही वे बेहतर व्यक्ति हैं जो किसी व्यक्ति की जन्म-तिथि के बारे में अभिसाक्ष्य दे सकते हैं ।

यदि स्कॉलर्स रजिस्टर में जन्म-तिथि के बारे में प्रविष्टि, माता-पिता या इस तथ्य की विशेष जानकारी रखने वाले किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दी गई सूचना पर की गई थी तो ही उनका प्रमाणक मूल्य होगा । अनंत राम शर्मा और कैलाश चंद्र तपारिया के परिसाक्ष्य मात्र दस्तावेजों को साबित करते हैं किन्तु उन दस्तावेजों की अंतर्वस्तुओं को साबित नहीं करते हैं । स्कॉलर्स रजिस्टर में उल्लिखित जन्म-तिथि का तब तक कोई साक्ष्यिक मूल्य नहीं होता है जब तक कि वह व्यक्ति जिसने प्रविष्टि की है या जिसने जन्म-तिथि बताई है, की परीक्षा नहीं की जाती है । दाखिला प्ररूप या स्कॉलर्स रजिस्टर में अंतर्विष्ट प्रविष्टि, माता-पिता द्वारा या संबंधित व्यक्ति की जन्म-तिथि के बारे में विशेष जानकारी रखने वाले व्यक्ति द्वारा दी गई सूचना के आधार पर की गई दर्शित होनी चाहिए ...।"

18. **मदन मोहन सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि शासकीय अभिलेख में की गई प्रविष्टियां, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 35 के अधीन ग्राह्य हो सकती हैं किन्तु न्यायालय को उनके प्रमाणक मूल्य की परीक्षा करने का अधिकार है । प्रविष्टियों की अनुप्रमाणिकता ऐसे प्रविष्टियों की सूचना देने वाले व्यक्तियों पर निर्भर करती है जिनके आधार पर ऐसी प्रविष्टियां अभिलिखित की गई हैं । न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :-

"20. जहां तक एक पदधारी द्वारा या शासकीय कर्तव्यों के अनुपालन में प्राधिकृत व्यक्ति द्वारा शासकीय अभिलेख में की गई प्रविष्टियों का संबंध है, वे साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 35 के अधीन ग्राह्य हो सकती हैं किन्तु न्यायालय को उनकी प्रमाणक मूल्य की परीक्षा करने का अधिकार है । प्रविष्टियों की अनुप्रमाणिकता ऐसे प्रविष्टियों की सूचना देने वाले व्यक्तियों की सूचना पर निर्भर करती है जिनकी सूचना पर वे अभिलिखित किए गए हैं और सूचना का स्रोत क्या था । विद्यालय रजिस्टर/

विद्यालय छोड़ने के प्रमाणपत्र की प्रविष्टियों को विधि के अनुसरण में साबित किया जाना अपेक्षित होता है और ऐसे मामलों में अपेक्षित सबूत का मानक वही होते हैं जैसा कि किसी अन्य सिविल या दांडिक मामले में होते हैं ।

21. किसी व्यक्ति की आयु अवधारित करने के लिए बेहतर साक्ष्य उसकी/उसके माता-पिता हैं, यदि यह असंदिग्ध दस्तावेजों द्वारा समर्थित है । यदि विद्यलाय रजिस्टर/प्रमाणपत्र में दर्शित जन्म-तिथि विश्वसनीय व्यक्तियों के असंदिग्ध साक्ष्य द्वारा विश्वसनीय पाया जाता है और समकालीन दस्तावेजों जैसे - नगर निगम, सरकारी अस्पताल, नर्सिंग होम इत्यादि के रजिस्टर में जन्म-तिथि, विद्यालय रजिस्टर में प्रविष्टि दर्शित होती है । {देखें - बृज मोहन सिंह **बनाम** प्रिया ब्रत नारायण सिन्हा [ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 282], बिराद मल सिंघवी **बनाम** आनंर पुरोहित [(1988) सप्ली. एस. सी. सी. 604 = ए. आई. आर. 1988 एस. सी. 1796], विष्णु **बनाम** महाराष्ट्र राज्य [(2006) 1 एस. सी. सी. 283 = (2006) 1 एस. सी. सी. (क्रि.) 217] और सतपाल सिंह **बनाम** हरियाणा राज्य [(2010) 8 एस. सी. सी. 741 = जे. टी. (2010) 7 एस. सी. 510]}

22. यदि कोई व्यक्ति विशिष्ट जन्म-तिथि का अवलंब लेना चाहता है और उसके निमित्त दस्तावेजों को प्रस्तुत करना चाहता है तो उसे इसमें उल्लिखित तारीख, समय इत्यादि की प्रमाणिकता, विशेष स्रोतों की जानकारी रखने वाले व्यक्ति की परीक्षा द्वारा साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32(5) या धारा 50, 51, 59, 60 और 61 इत्यादि के निबंधनों में इसकी प्रमाणिकता को साबित करना होता है {देखें - उपदेश कुमार **बनाम** पृथ्वी सिंह [(2001) 2 एस. सी. सी. 524 = (2001) एस. सी. सी. (क्रि.) 1300 = (2001) एस. सी. सी. (एल. एंड एस.) 1063] और पंजाब राज्य **बनाम** मोहिंदर सिंह [(2005) 3 एस. सी. सी. 702 = ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 1868]} ।"

19. **राम सुरेश सिंह** बनाम **प्रभात सिंह और एक अन्य**[1] वाले मामले में, दिए गए निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि विद्यालय रजिस्टर में प्रविष्टि एक लोक दस्तावेज नहीं हो सकता है और इस प्रकार इसे विधि के अनुसरण में साबित करना चाहिए । न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :-

> "12. विद्यालय दाखिला रजिस्टर में एक छात्र की आयु से संबंधित प्रविष्टि को साबित करने के लिए साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 35 में अधिकथित शर्त को उसकी सुसंगतता को अवधारित करने के प्रयोजन के लिए विचार में लेना होता है । किन्तु, इस मामले में उक्त शर्त की संतुष्टि होना अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए । विद्यालय रजिस्टर में प्रविष्टि एक लोक दस्तावेज नहीं हो सकता है और इस प्रकार, इसे विधि के अनुसरण में साबित करना चाहिए जैसा कि इस न्यायालय द्वारा **बिराद मल सिंघवी** (उपर्युक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है किन्तु इस मामले में, उक्त प्रविष्टि साबित की गई है ।"

20. हमारा यह निष्कर्ष है कि उच्च न्यायालय ने प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित तथ्य के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करके विधि में गंभीर त्रुटि कारित की है । वादी ने, वाद पत्र में तारीख 15 जून, 1963 के निर्मुक्ति विलेख को इस आधार पर चुनौती नहीं दी है कि वह निष्पादन की तारीख पर अवयस्क था, न ही उसने उक्त दस्तावेज के निष्पादन में कपट, प्रपीड़न या असम्यक् प्रभाव के आधार पर चुनौती दी है । उसने ऐसा अभिवाक् नहीं किया है जैसा कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश vi के नियम 4 के निबंधनों में अभिवाक् किया जाना अपेक्षित है । वादी द्वारा उद्भूत एकमात्र अभिवाक् यह है कि वह वर्ष 1963 में, अपने पिता की मृत्यु के समय पर अवयस्क था । उसने वाद पत्र में अपने पिता की मृत्यु की तारीख को प्रकट नहीं किया है । वाद पत्र में प्रकथन यह है कि कतिपय दस्तावेजों पर उसके हस्ताक्षर ले लिए गए थे किन्तु वह उनकी अंतर्वस्तुओं को नहीं जानता था ।

---

[1] (2009) 6 एस. सी. सी. 681.

21. लिखित कथन में, यह सुस्पष्टत: अभिवाक् किया गया है कि निर्मुक्ति विलेख को स्वैच्छिक रूप से निष्पादित किया गया था और वह कुटुम्ब से दूर चला गया था और अपने ससुर के गांव में रह रहा था । यह तथ्य कि उसने गांव छोड़ दिया था और अपने ससुर के घर में रुका था, उसके द्वारा स्वीकृत है जब वह अभि. सा. 1 के रूप में उपस्थित हुआ था । उच्च न्यायालय के समक्ष यह भी विवादित नहीं किया गया है कि उसके द्वारा 5,000/- रुपए प्राप्त किया गया था जब तारीख 15 जून, 1963 को निर्मुक्ति विलेख निष्पादित हुआ था ।

22. वादी ने तारीख 15 जून, 1963 को निष्पादित निर्मुक्ति विलेख के अनुसरण में 5,000/- रुपए के प्रतिफल के फायदे को लिया था । उसने फाइल वाद में ऐसे निर्मुक्ति विलेख को चुनौती नहीं दी है अपितु उसने संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब का सदस्य होने का प्राख्यान किया है, यद्यपि, स्वयं उसके साक्ष्य के अनुसार, उसने संयुक्त कुटुम्ब छोड़ दिया था, और अपने ससुर के गांव में रहने लगा था । इसके पश्चात्, निर्मुक्ति विलेख के आधार पर, कुटुम्ब के अन्य सदस्यों ने अन्य प्रतिवादियों के पक्ष में कुछ संपत्ति अंतरित की है, इसलिए, वाद, डिक्री नहीं हो सकता है जब दो रजिस्ट्रीकृत दस्तावेज (प्रदर्श डी-1 और डी-2) को वादी द्वारा विवादित नहीं किया गया है जबकि प्रतिपरीक्षा में ऐसे दस्तावेजों का सामना किया था ।

23. हमारा यह निष्कर्ष है कि यह साबित करने का भार वादी पर था कि वह निर्मुक्ति विलेख के निष्पादन के समय पर अवयस्क था । वह तारीख 8 अप्रैल, 1946 के रूप में अपनी जन्म-तिथि को साबित करने में असफल रहा, इसलिए, उसका वाद खारिज किए जाने योग्य है और विचारण न्यायालय तथा प्रथम अपील न्यायालय द्वारा सही ही खारिज किया गया था । उच्च न्यायालय, द्वितीय अपील में, विभिन्न मत अपनाने के लिए कि ऐसे दस्तावेज साबित हैं, साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन नहीं कर सकता है । अभिकथित अनुचित विचार के कारण अवैधता से विधि का सारवान् प्रश्न उद्भूत नहीं होता है ।

24. वादी ने यह स्वीकार किया है कि निर्मुक्ति विलेख और विवाह विलेख क्रमश: तारीख 15 जून, 1963 और तारीख 29 जून, 1964 को

उसके द्वारा निष्पादित किया गया है जब उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में सामना किया था । दोनों दस्तावेज, रजिस्ट्रीकृत दस्तावेज हैं । स्वीकृति के आधार पर, दोनों न्यायालयों ने यह तथ्य का निष्कर्ष निकाला है कि वादी तारीख 8 अप्रैल, 1986 के रूप में अपनी जन्म-तिथि को साबित करने में समर्थ नहीं रहा है । हमारा यह निष्कर्ष है कि उच्च न्यायालय ने उसी साक्ष्य के आधार पर जिस पर दोनों विचारण न्यायालय के साथ ही प्रथम अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि वादी तारीख 8 अप्रैल, 1986 के रूप में अपनी जन्म-तिथि साबित करने में असफल रहा है, मात्र विभिन्न अपनाते हुए, द्वितीय अपील में हस्तक्षेप करके गंभीर त्रुटि कारित की है ।

25. यह प्रश्न कि क्या विधि का सारवान् प्रश्न उद्भूत हुआ है, इस न्यायालय की निर्वचन करने की विषयवस्तु है । **कर्नाटक वक्फ बोर्ड** बनाम **अंजुमन-ई-इस्मेल मदरीस-उल-निस्वान**[1] वाले मामले में, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि तथ्य के निष्कर्ष में, द्वितीय अपील के अधीन हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है । इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :-

> "12. इस न्यायालय ने बार-बार यह अभिनिर्धारित किया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील में हस्तक्षेप करने के लिए उच्च न्यायालय की शक्ति मात्र विधि के सारवान् प्रश्न को विनिश्चित करने तक सीमित है, यदि उस मामले में ही वह उद्भूत हुआ है । निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए शुद्धत: तथ्य के निष्कर्षों में आम तौर पर उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करने को अनुचित माना गया है, इस निष्कर्ष पर पहुंचे बिना कि उक्त तथ्य के निष्कर्ष या तो अनुचित है या अभिलेख पर उपस्थित सामग्री पर आधारित नहीं है ।
>
> 13. रामानुज नायडू **बनाम** वी. कन्हैया नायडू [(1996) 3 एस. सी. सी. 392] वाले मामले में, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि –

---

[1] (1999) 6 एस. सी. सी. 343.

'अब, यह सुस्थिर है कि विचारण न्यायालय और प्रथम अपील न्यायालय के तथ्य के समवर्ती निष्कर्षों में, उच्च न्यायालय द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए, हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है । उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश, संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील विनिश्चित करने में अपनी अधिकारिता के बारे में पूर्णतया भ्रांति में थे जिस तरीके से उन्होंने किया ।'

14. नवनीत मल **बनाम** अर्जुना चेट्टी [(1996) 6 एस. सी. सी. 166] वाले मामले में, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि –

उच्च न्यायालय द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन निचले न्यायालयों के समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने से बचना चाहिए जब तक कि बाध्यकारी कारणों द्वारा अपेक्षित न हो । किसी भी दशा में उच्च न्यायालय से निचले न्यायालयों के निष्कर्षों को प्रतिस्थापित करने के ठीक पूर्व साक्ष्यों का पुनर्मूल्याकंन करने की प्रत्याशा नहीं की जाती है । ..... यह भी उपधारणा की जाती है कि उसी साक्ष्य के पुनर्मूल्यांकन करने से एक अन्य मत संभाव्य होता है जिसे कि उच्च न्यायालय द्वारा नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अपनाए गए मत सामग्रियों पर आधारित नहीं थे ।

15. और पुन: सचिव, तलिपाराम्बा, शिक्षा सोसाइटी **बनाम** मुथेदत्त मल्लीसेरी इल्लात एम. एन. [(1997) 4 एस. सी. सी. 484, पृष्ठ 486, पैरा 5] वाले मामले में, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि –

'उच्च न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने के लिए अनाधिकार रूप से हस्तक्षेप करने में और तथ्य का उल्टा

निष्कर्ष जो अननुज्ञेय है, अभिलिखित करने में गंभीर त्रुटि कारित की है ।'"

26. **कोनाडिबा दगदू कदम** बनाम **सबितकी बाई सोपान गुजर और अन्य**[1] वाले मामले में, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि दी हुई परिस्थितियों से, यदि दो निष्कर्ष निकाले जाने संभाव्य है तो वहां निचले अपील न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष, उच्च न्यायालय पर बाध्यकारी होते हैं । उक्त मामले में, प्रथम अपील न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निर्णय को अपास्त कर दिया था । यह अभिनिर्धारित किया गया कि उच्च न्यायालय हस्तक्षेप कर सकता है, यदि निचले न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष, प्रयोज्य विधि के आज्ञापक उपबंधों के प्रतिकूल होने के कारण त्रुटिपूर्ण है अथवा यदि न्यायालय द्वारा की गई उद्घोषणाओं के आधार पर सुस्थिर प्रास्थिति है अथवा अग्राह्य साक्ष्य पर आधारित है अथवा साक्ष्य के बिना निष्कर्ष निकाला गया है । इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

"5. यह उच्च न्यायालय की अधिकारिता के भीतर नहीं आता है कि वह प्रथम अपील न्यायालय की हैसियत में तथ्य के अंतिम न्यायालय द्वारा जिन आधारों पर निष्कर्ष निकाले गए हैं उन आधारों का अन्वेषण करना अपेक्षित है । यह सत्य है कि निचले अपील न्यायालय द्वारा विश्वसनीयता के संबंध में विचारण न्यायालय द्वारा स्वीकृत साक्षियों को साधारण तौर पर नामंजूर नहीं करना चाहिए किन्तु जहां भी विचारण न्यायालय द्वारा स्वीकृत साक्षियों को नामंजूर किया जाता है वहां वह द्वितीय अपील हस्तक्षेप का आधार नहीं होता है जहां यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि अपील न्यायालय ने ऐसा करने के लिए समाधानप्रद कारणों को दिया है । यदि जहां दी हुई परिस्थितियों से दो निष्कर्ष निकाले जाने संभाव्य हैं, वहां निचले अपील न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष, द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय पर बाध्यकारी होते हैं । कोई अन्य उपाय अंगीकृत करना अनुज्ञेय नहीं

---

[1] (1999) 3 एस. सी. सी. 722.

है । उच्च न्यायालय, प्रथम अपील न्यायालय की राय पर अपनी राय प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है, जब तक कि यह निष्कर्ष नहीं निकाला जाता है कि निचले अपील न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष, उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई उद्घोषणाओं के आधार पर इसकी सुस्थिर प्रास्थिति में प्रयोज्य विधि के आज्ञापक उपबंधों के प्रतिकूल होने के नाते त्रुटिपूर्ण हैं अथवा साक्ष्य के बिना निष्कर्ष निकाला गया है ।"

27. **संतोष हजारी** बनाम **पुरुषोत्तम तिवारी**[1] वाले एक अन्य मामले में, इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

"14. विधि का मुद्दा जो दो राय को स्वीकार नहीं करता है, विधि की प्रतिपादना हो सकता है किन्तु सारवान् विधि का प्रश्न नहीं हो सकता है । सारवान् विधि का प्रश्न होने के लिए इसे वाद-विवाद योग्य होना चाहिए न कि पूर्ववर्ती रूप में भूमि विधि द्वारा सुस्थिर या पूर्ववर्ती में बाध्यकारी होना चाहिए और मामले का विनिश्चय करने के लिए सामग्रियों पर आधारित होना चाहिए । यदि किसी भी प्रकार से उत्तर दिया जाता है जहां तक कि उसके समक्ष पक्षकारों के अधिकारों का संबंध है । मामले में अंतर्वलित विधि का प्रश्न होने के लिए अभिवचनों में इसे अधिकथित करने के लिए प्रथमत: आधारित होना चाहिए और तथ्यों के न्यायालयों द्वारा निकाले गए तथ्य के कायम निष्कर्ष से प्रश्न उद्भूत होना चाहिए और यह आवश्यक रूप से विनिश्चत होना चाहिए कि विधि का प्रश्न मामले के ठीक और उचित विनिश्चय के लिए है । उच्च न्यायालय के समक्ष प्रथम बार के लिए उद्भूत पूर्णतया नए मुद्दे, मामले में अंतर्वलित प्रश्न नहीं होते हैं जब तक कि यह मामले की जड़ तक नहीं जाता है । इसलिए, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा कि क्या विधि का प्रश्न, सारवान् है और मामले में अंतर्वलित है या नहीं । सभी प्रक्रमों पर न्याय के करने के लिए अपरिहार्य बाध्यताओं के बीच न्यायिक संतुलन बनाने

---

[1] (2001) 3 एस. सी. सी. 179.

के लिए सभी प्रकार के मानकों पर विचार होना चाहिए और इसे जीवन में अनंत काल तक लंबित रखने से बचने की आवश्यकताओं से प्रेरित होना चाहिए ।"

28. **राजस्थान राज्य** बनाम **शिव दयाल**[1] वाले एक अन्य नवीनतम मामले में, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि तथ्य के समवर्ती निष्कर्ष, बाध्यकारी हैं जब तक कि यह इंगित नहीं किया जाता है कि यह अभिवचनों से असंबद्ध अभिलिखित किया गया था या यह किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं था या अभिलेखों और दस्तावेजों में प्रस्तुत सामग्रियों के गलत परिशीलन पर आधारित था । न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारत किया है :-

"जब तथ्य के किसी समवर्ती निष्कर्ष को द्वितीय अपील में आक्षेपित किया जाता है तो अपीलार्थी यह इंगित करने का हकदार होता है कि यह विधि में दूषित है क्योंकि इसे अभिवचनों से असंबद्ध अभिलिखित किया गया था या यह किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं था या यह दस्तावेजी साक्ष्य में प्रस्तुत सामग्रियों के गलत परिशीलन पर आधारित था या इसे विधि के किसी उपबंध के विरुद्ध अभिलिखित किया गया था और अंततः विनिश्चय ऐसा हुआ है जिसे न्यायिक तौर पर कार्य करते हुए किसी न्यायाधीश द्वारा युक्तियुक्त तौर पर नहीं निकाला जा सकता है । {देखें : राजेश्वर विश्वनाथ ममीद्वार और अन्य **बनाम** दशरथ नारायण चिल्वेलकर और अन्य [ए. आई. आर. 1943 नागपुर 117, पैरा 43] वाले मामले में नागपुर उच्च न्यायालय के तत्कालीन न्यायाधीश विद्वान् विवियन बोस द्वारा व्यक्त की गई मताभिव्यक्तियां} ।"

29. विद्वान् उच्च न्यायालय पूर्वोक्त निर्णयों में अधिकथित परिक्षणों से संतुष्ट नहीं हैं । दोनों न्यायालयों, विचारण न्यायालय और विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने विद्यालय छोड़ने के प्रमाणपत्र की परीक्षा की है और यह निष्कर्ष निकाला है कि ऐसे प्रमाणपत्र से जन्म-तिथि साबित नहीं होती है । उच्च न्यायालय, विsचारण न्यायालय के

---

[1] (2019) 8 एस. सी. सी. 637.

रूप में कार्य करते हुए, विभिन्न मत अपना सकता है किन्तु जब एक बार दोनों न्यायालयों ने ऐसा निष्कर्ष निकाला है जो दस्तावेजों की सामग्रियों के गलत परिशीलन पर आधारित नहीं है, न ही इसे विधि के किसी उपबंधों के विरुद्ध अभिलिखित किया गया है और न ही यह कहा जा सकता है कि कोई न्यायाधीश न्यायिक तौर पर और युक्तियुक्त तौर पर कार्य करते हुए, ऐसा निष्कर्ष नहीं निकाल सकता है तो उच्च न्यायालय द्वारा त्रुटि करना नहीं कहा जा सकता है । परिणामत:, उच्च न्यायालय के समक्ष विचार के लिए विधि का सारवान् प्रश्न उद्भूत नहीं हुआ था ।

30. इस प्रकार, हमारा यह निष्कर्ष है कि उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित तथ्य के निष्कर्ष जिसकी पुष्टि प्रथम अपील न्यायालय द्वारा की गई है, में हस्तक्षेप करके विधि में त्रुटि कारित की है । द्वितीय अपील में, तथ्य के निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है जब तक कि निष्कर्ष अनुचित नहीं है । उच्च न्यायालय तथ्य के निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है ।

31. वर्तमान मामले के पूर्वोक्त वर्णित विधि और तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, हमारा यह निष्कर्ष है कि उच्च न्यायालय ने प्रथम अपील न्यायालय और विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित तथ्यों के समवर्ती निष्कर्षों को अपास्त करने में विधि में गंभीर त्रुटि कारित की है । परिणामत:, अपील मंजूर की जाती है और वाद को खारिज किया जाता है, खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

क.